आदि गौ 'सुरभि'

पं. अशोक पारीक, पुणे

अखिल विश्व में गौ माता का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। गाय को विश्व की माता कहा जाता है। दुर्देव है संसार का कि, हम लोग गाय के महत्त्व को नहीं समझ पा रहे हैं। गौ माता दूध प्रदान करनेवाली ही केवल साधारण जीव नहीं है, यह संपूर्ण मनोवांछित इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली, सर्वसुखप्रदायिनी गौ माता है। क्योंकि गाय का प्राकट्य भगवान श्रीकृष्ण के वामभाग से हुआ है, जिसका नाम आदि गौ सुरभि के नाम से प्रसिद्ध है।
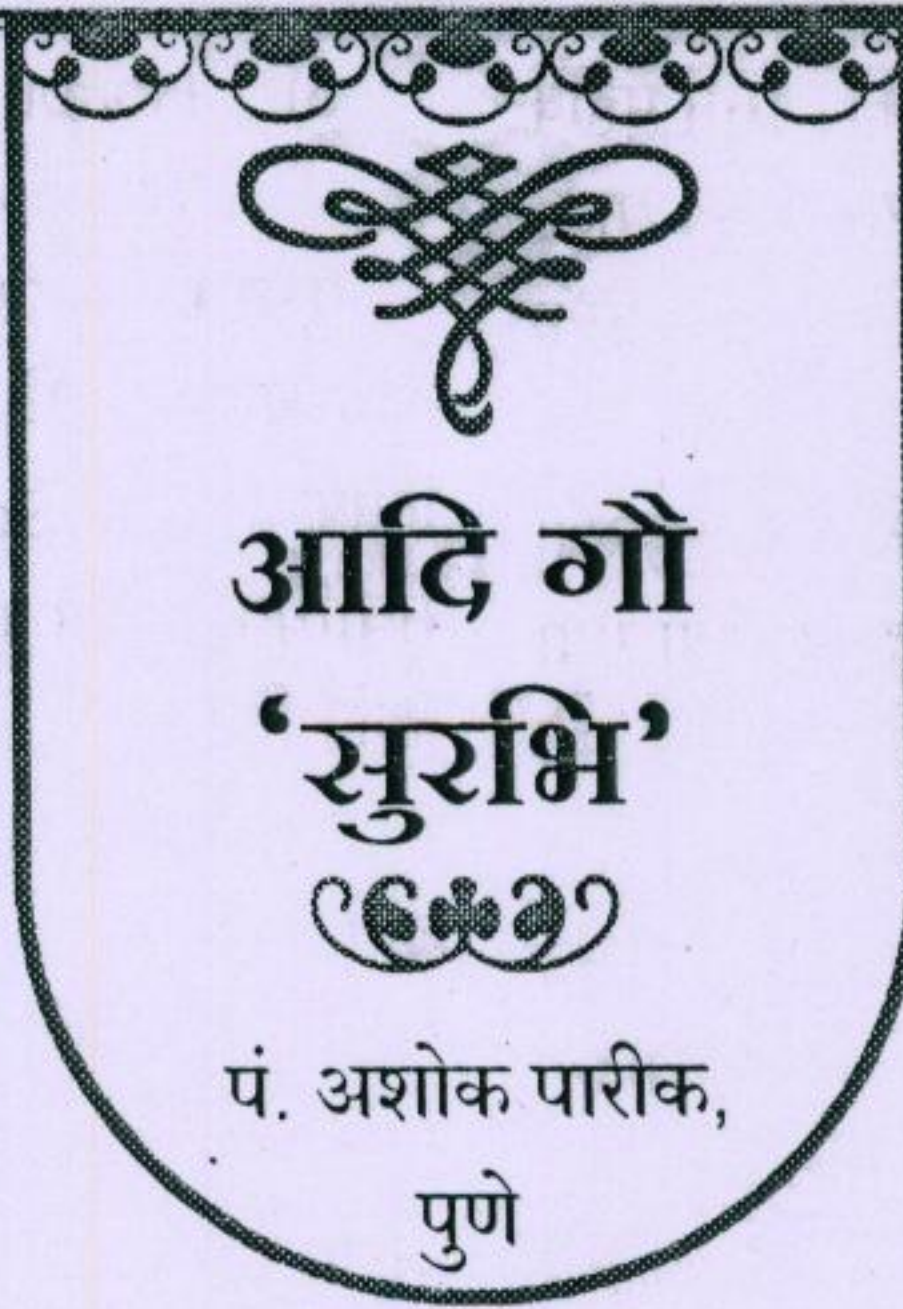
एक बार भगवान श्रीकृष्ण राधाजी के साथ सहस्रों गोपिकाओं से घिरे हुए वृंदावन धाम में विश्राम कर रहे थे, उन्हें कुछ थकावट महसूस हो रही थी। अपनी थकावट दूर करने के लिये भगवान की इच्छा दूध पीने की होती है, उसी समय भगवान के वाम अङ्ग से 'सुरभि' गाय का प्राकट्य होता है। गौ के साथ 'मनोरथ नाम के एक बछड़े का भी प्राकट्य होता है। सुरभि के स्तन दूध से भरे हुए थे, वह दूध दूसरे अमृत के समान ही था, भगवान ने दुग्धामृत पीकर अपनी थकान मिटायी, बचा हुआ दूध नीचे गिर गया जिससे वहां 'क्षीर' सरोवर का निर्माण हुआ जो कि गोलोक धाम में प्रसिद्ध है। फिर भगवान की इच्छा से वही असंख्य कामधेनु गौ प्रकट होती है। उतने ही गोप सुरभि के रोमकूप से निकल आते हैं, फिर उन गायों की संतानें जों कि असंख्य है, इस प्रकार भगवती सुरभि देवी से गायों की सृष्टि कही जाती है।

उस समय भगवान ने दीपावली के दूसरे दिन देवी सुरभि का पूजन किया तब से सर्वत्र गो-पूजन का प्रचार हुआ। **(ॐ सुरभ्यै नमः)** सुरभि देवी का यह षडक्षर मंत्र है। इस मंत्र के एक लाख जप करने से सर्वकामना पूर्ण होती है।

इसी भगवती सुरभि देवी के वंश में उत्पन्न हुई भगवती नंदिनी गौ की कृपा से ही महाराज दिलीप को रघु जैसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। एक बार महाराज दिलीप पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ के पास जाकर अपना दुःख प्रकट करते हैं। महर्षि वसिष्ठ ध्यान लगाकर महाराज दिलीप के पूर्वकर्मों को देखते है, तब उन्हें ज्ञात होता है कि, जब महाराज दिलीप इंद्र से मिलकर स्वर्ग से भूलोक पर आ रहे थे, उस समय कामधेनु सुरभि वहीं मार्ग में खड़ी थी और महाराज दिलीप को आवाज भी दी, लेकिन बादलों की घड़घड़ाहट तथा रथ चक्रों की अत्यधिक आवाज एवं भूलोक पर आने की आतुरता से सुरभि के वचन महाराज को सुनायी नहीं दिये। तब सुरभि ने महाराज के द्वारा मेरा अनादर हुआ है ऐसा सोचकर शाप दिया कि राजन् ''जब तक तुम मेरी संतान की सेवा नहीं करोगे तब तक तुम निःसंतान रहोगे।'' कामधेनु सुरभि के शाप को जानकर महर्षि वसिष्ठ ने कुछ समय महाराज दिलीप को आश्रम में रहकर सुरभि गौ की पुत्री नंदिनी जो कि महर्षि वसिष्ठ के यहां निवास कर रही है उसकी सेवा करने को कहा है, महाराज दिलीप, धन्य है उनकी गौ भक्ति। प्रातःकाल होते ही महारानी सुदक्षिणा नंदिनी का विधिवत् पूजन करती आरती उतारती तत्पश्चात् पति के संरक्षण में नंदिनी की कुछ दूर तक अगवाहि करती हुई छोड़कर आ जाती। महाराज दिलीप इस प्रकार अपनी गौ भक्ति में तल्लीन भगवती नंदिनी की सेवा करते रहते। महाकवि कलिदास लिखते है-

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥

महाराज दिलीप छाया की तरह भगवती नंदिनी का अनुगमन करते वह खड़ी रहती तो ये खड़े रहते, वह चलती तो ये चलते, वह बैठती तो ये बैठते, नंदिनी जल पी लेती तो ये जल पीते। इस प्रकार महाराज भूपति होकर भी सम्राट होकर भी गौ-माता की पूरे मन से सेवा करते। क्योंकि इसी गौ-माता ने आगे जाकर महाराज से कहा कि दिलीप

न केवलानां पयसां प्रसूतिं
अवेहि मां कामदुधां प्रसन्नाम्॥

मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, वर माँगो तुम मुझे केवल दूध देनेवाली

साधारण गाय मत समझो। मैं तुम्हारी मनोवांच्छित इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु सुरभि की संतान नंदिनी गौ हूँ। और महाराज भी गौ माता के इस महत्त्व को इस महानता व श्रेष्ठता को समझकर गो सेवा में लगे थे। कथा अत्यंत ही रोचक, महाकवि कालिदास के साहित्य रस से भरी तथा हर गौ-भक्त के आँखों में अश्रुधाराओं को प्रवाहित करनेवाली बहुत ही लंबी है। आगे चलकर नंदिनी महाराज दिलीप की परीक्षा लेती है और स्वयं सिंह का रूप धारण कर स्वयं पर ही सिंह का आक्रमण करवाती है, महाराज दिलीप इस दृश्य को देखते है कि, मेरी गौ-माता नंदिनी को एक सिंह ने अपने पंजों में फंसा रखा है और वो गौ आर्तनाद कर रही है। महाराज उसे छुड़ाने के लिये तरकश में से बाण निकालना चाहा, लेकिन हाथ वहीं थम गये और एक आश्चर्य हुआ मनुष्य की वाणी में सिंह बोलने लगा, 'राजन् इस गाय को खाकर मैं अपनी क्षुधा मिटाना चाहता हूँ, तुम यहाँ से पुनः लौट जाओ।' लेकिन नंदिनी छटपटाती हुई कातरदृष्टि से, आँखों से अश्रु बहाती हुई दिलीप की ओर निहार रही है। रघुवंश महाकाव्य के इस प्रसंग को पढ़कर आज के हर भारतीय युवा भाई, बहिनों को गो हत्या बंद करवाने तथा गो-रक्षा का कर्तव्य पालन अवश्य करना चाहिये क्योंकि इस नंदिनी को जिस प्रकार शेर ने अपने पंजों में दबोचा है तथा नंदिनी व्याकुल है, अश्रु बहा रही है। उसी प्रकार आज के दुष्टों ने इसी नंदिनी के संतानों को कत्तलखानों में दबोच रखा है। इस समय हर एक व्यक्ति को महाराज दिलीप का चरित्र ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक एवं समय व गौ-माता की मांग है। अगर ऐसा नहीं हुआ, देश में सुरभि की संतान गौ-माता ही नहीं बची तो इस विश्व का अकल्याण निश्चित है। क्योंकि गौ-माता के बिना गति नहीं, मुक्ति नहीं।

महाराज दिलीप के द्वारा छटपटाती हुई गौ को देखकर अपने जीवन से कही अधिक मूल्यवान नंदिनी गौ का जीवन जान पड़ा और महाराज ने सिंह से निवेदन किया कि, तुम मुझे खाकर अपनी क्षुधा मिटा लो और नंदिनी को छोड़ दो। सिंह ने महाराज के प्रत्युत्तर में जो कहा, धन्य है, कालिदास की लेखनी,

एकातपत्रं जगत प्रभुत्वं
नवं वयः कान्त मिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्॥

राजन्! तुम सारे जगत् के शासक हो गुरु को नंदिनी के बदले करोड़ों गाये देकर प्रसन्न कर सकते हो, इस छोटे से हेतु के लिये अपना स्वस्थ, सुंदर शरीर और यौवन की अवहेलना कर जान की बाजी लगाकर लगता है तुम अपना होश खो बैठे हो। इस प्रकार सुंदर चर्चाएं चली है और अंत में महाराज दिलीप सिंह के सामने नंदिनी के बदले स्वयं लेट जाते है। नंदिनी प्रसन्न होती है, महाराज आँख खोलकर देखते हैं तो वहां केवल नंदिनी ही है, कोई सिंह नहीं है। उस समय नंदिनी अपना दुग्धामृत पीने को कहती है। लेकिन महाराज ने कहा, 'भगवती, इस दूध पर पहले आपके वत्स का अधिकार है, होमादि अनुष्ठान के द्वारा बचे हुए दूध को ही मैं पी सकता हूँ।'

नंदिनी के हृदय को फिर से महाराज ने जीत लिया। नंदिनी घर जाकर अपने वत्स को दूध पिलाती है। फिर महाराज नंदिनी के उस प्रसाद को स्वीकार करते हैं और उन्हें गौ-माता की कृपा जो कि गौ-सेवा से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। जिनका नाम रघु के नाम से प्रसिद्ध होता है। आगे चलकर यही वंश रघुवंश कहलाया। ये सब गौ-माता सुरभि की कृपा, सुरभि संपूर्ण गायों में आदि गौ है और भारत की संपूर्ण गायें इसकी संतान है। इसलिये सब गायों में वह शक्ति है जो सुरभि में है। इसलिये हम सबको मिलकर दिलीप राजा की तरह गौ-माता की पूर्ण मनोभाव से सेवा करनी चाहिए तथा गौ-हत्या बंद करवाने के लिये तन, मन, धन से अखंड प्रयास करना चाहिए। इस प्रयास को पूर्णता तक ले जाने के लिये हर व्यक्ति गाय की सेवा करें। भारतवर्ष के हर परिवार में गौ-माता की सेवा हो, हर घर में गौ का निवास हो, अगर ऐसा संभव न हो तो हमारी नजदीकी गौ-शाला में एक गाय का खर्च हमारे परिवार के द्वारा किया जाय'। यह गौ-हत्या को रोकने का बहुत ही सुंदर और सुलभ उपाय है।

❑❑❑

आधुनिक युग में गीता !

- पं. अशोक पारीक

श्रीमद् भगवदगीता वर्तमान मानव के लिए अत्यंत ही उपयोगी एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। आज तीन प्रकार के मनुष्य हमें समाज में दिखाई देते हैं। पहला 'अज्ञ'; जिसने अपने भीतरी ज्ञान की ज्योति उजागर नहीं की है। दूसरा 'अश्रद्धावान'; जो ईश्वर है अथवा नहीं; इस प्रकार का प्रश्न करके ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार तो करता है, लेकिन ईश्वर के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं है। तीसरा 'संशयी'; जिसकी ईश्वर के प्रति श्रद्धा तो है लेकिन संशय है। इन तीनों प्रकार के मनुष्यों का वर्णन श्रीमद्भगवदगीता में बड़ी स्पष्टता से प्राप्त होता है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

गीता जी का मानना यह है कि मनुष्य इहलोक में और परलोक में सुखी हो सकता है। जिसने जिंदा रहकर अपने परिवारजनों को एवं समाज को स्वर्गिक नहीं बना रखा है, वह मरने के बाद स्वर्गीय बनने की आकांक्षा रखता है तो गलत है।

गीता कहती है, आप अपने घर को स्वर्ग बनाइए, आप मरने के बाद भी स्वर्ग में ही जाएँगे; इसमें किंचित् मात्र भी संशय नहीं है। स्वर्ग का चिंतन हम बाद में भी कर सकते हैं, सबसे पहले हमें यह विचार करना परमावश्यक है कि क्या हम इहलोक में सुखी हैं ? सुख भी दो प्रकार के हैं। आज का सामान्य मनुष्य भौतिक सुख को ही सर्वस्व मानकर संसार की वासनाओं की मस्ती में मस्त रहता है। यह भौतिक सुविधाओं की संपन्नता को ही सुख मान लेता है। थोड़ा हम विचार करें कि इन सुविधाओं से ही अगर हम परमसुखी हैं तो फिर इन सुविधाओं के चले जाने पर दुःखों का सामना क्यों करना पड़ता है। मैं यह नहीं कहूंगा कि इन भौतिक सुविधाओं में बिल्कुल ही सुख नहीं है, सुख तो है, लेकिन यह सुख आगमापायि हैं, आने-जानेवाले हैं, अनित्य हैं। इसलिए जो आने-जानेवाला है, अनित्य सुख है, वह हमें परमसुखी नहीं बना सकता। जो हमारे मन की चाह है वह मन परमसुख की चाह में रात और दिन भटकता रहता है। उसे अथाह, अपार, अनंत और असीम सुख की इच्छा है। यह सुख इन भौतिक सुविधाओं से हम अपने मन को प्रदान नहीं कर सकते। आज का मानव दौड़ को बहुत अधिक मान्यता देता है। वह चाहता है कि सुख मिलेगा तो दौड़कर ही मिलेगा लेकिन गीता कहती है, तुम्हें सुख मिलेगा लेकिन अपने मन को एकाग्र करने से, इस महती दौड़ से बचाकर अपने आप में स्थिर करने से मिलेगा। नहीं तो कस्तूरी मृग, कस्तूरी की सुगंध को खोजने के लिए दौड़ता रहता है, लेकिन कस्तूरी नहीं मिलती और अंत में यह दौड़ उस मृग के प्राण हर लेती है। मैं सोचता हूँ कि कहीं हमारे साथ भी ऐसा तो नहीं हो रहा है। किसी राजस्थानी कवि की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं।

दौड़ सके तो दौड़ ले, जब लगि तेरी दौड़।
दौड़ थक्या धोखा मिट्या, वस्तु ठोड़ की ठोड़।।

कवि कहता है कि यह धोखा मन में क्यों रखते हो कि मैं दौड़ा नहीं। जितना तुम्हें दौड़ना है, उतना दौड़ लो। जब तुम्हारी दौड़ समाप्त हो जाएगी तब समझ में आएगा कि मैं जिस वस्तु के लिए दौड़ रहा था वह वस्तु तो मेरे ही पास है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम जिन भौतिक सुविधाओं की संपन्नता को ही सुख मान रहे हैं, वह चिरकालीन सुख नहीं है। उस सुख के चले जाने पर अत्यंत दुःख का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा जो आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक सुख है, इसका आनंद कुछ और है। गीता कहती है-

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।

जो पुरुष अंतरात्मा में ही सुखवाला है, आत्मा में ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञानवाला है, वह परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त सांख्ययोगी

शांत ब्रह्म को प्राप्त होता है। कितना सुंदर संदेश गीता हमें प्रदान कर रही है कि अगर मनुष्य को स्थायी सुख प्राप्त करना होगा तो उसे मन की दौड़ समाप्त कर परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त करना होगा एवं अपनी अंतरआत्मा को परमसुख समझकर उसमें ही निरंतर चिंतनशील रहने की आवश्यकता है। निरंतर परमात्मा में स्थित रहने पर अवश्य ही समदर्शिता का भाव उजागर होता है। जो हमारे परमानंद का मूल कारण है। आज के मानव के दुःखों का मूल कारण दूसरों का सुख है। किसी पड़ोसी का सुख हमसे सहन नहीं होता लेकिन जब हम गीता के संदेश को प्राप्त कर समदर्शी हो जायँगे फिर सब अपने ही लगने लगेंगे। पराया या दूसरा कोई होगा ही नहीं। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना जागृत हो जाएगी और हम इहलोक में परमसुखी होंगे। जब इहलोक में सुखी तो फिर परलोक में भी परमसुखी।

भगवान कहते हैं अज्ञ, अश्रद्धावान, संशयी ये तीन प्रकार के मनुष्य इहलोक व परलोक दोनों में ही सुख प्राप्त नहीं कर सकते। अज्ञ, यानी जो भीतरी ज्ञान, विवेक व योग्यताओं का सम्यक् उपयोग नहीं करता। संसार में जितने भी प्राणी हैं; उनमें सर्वश्रेष्ठ मानव माना गया है, क्योंकि अन्य प्राणी अपनी योग्यताओं को स्वयं पहचान नहीं पाते, वे केवल कठोर परिश्रम करते हुए कर्मों में लगे रहते हैं। अच्छे-बुरे का कोई खयाल नहीं। लेकिन मानव के भीतर भगवान ने योग्यताएँ भरी हैं। इस संसार में अयोग्य कोई नहीं। बस ! केवल अपनी योग्यताओं को पहचानकर उन्हें प्रकट करनेवालों की आवश्यकता है। इसलिए मनुष्य को निज विवेक, स्वयं योग्यताओं को उजागर कर विश्वरूप परमात्मा का छल, कपट, दंभ और स्वार्थ का त्याग करते हुए खूब मनोभाव से सेवा करनी चाहिए।

दूसरा है 'अश्रद्धावान', पहले भी हमने चर्चा की है कि यहाँ कोई अयोग्य नहीं है। ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मानव के पास न हो। इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं -

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन अमल सहज सुखराशि।

मानव के पास सुखों का भंडार है, वह स्वयं मलरहित है, साक्षात् मेरे प्रभु का अंश है, जिस प्रकार मिठाई में से शक्कर को अलग नहीं कर सकते। उसी प्रकार जीव और शिव को कोई अलग नहीं कर सकता। लेकिन मानव तार्किक है, जिद्दी है, इसलिये भगवान के द्वारा दी गई योग्यताओं का गलत उपयोग करते हुए ईश्वर को ही नकार देता है। ऐसे भी लोग हैं जो अपने माता-पिता को भी निज स्वार्थों के कारण स्वीकार नहीं करते। फिर वे प्रभु को कैसे पहचानेंगे ? लेकिन माता-पिता अथवा परमात्मा पर श्रद्धा न रखने से क्या उनका अस्तित्व नहीं है ? नहीं; हो सकता तो है लेकिन मैं दुर्भागी हूँ, उन्हें नहीं पहचान पाया। परमात्मा है कि नहीं; यह प्रश्न जब हम करते हैं तो प्रभु का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, आलू लेने दूकान में गए उत्तर मिला, आलू समाप्त हो गए। इसका मतलब यह तो नहीं कि सारे मार्केट में ही आलू समाप्त हो गए। मार्केट में तो हैं लेकिन उस दूकानवाले के पास नहीं हैं। उसी प्रकार ईश्वर तो सर्वत्र हैं। वे कभी समाप्त नहीं होते लेकिन यह अश्रद्धावान पुरुष उन्हें पहचान नहीं पाता।

तीसरा है संशयी। इस प्रकार के जो लोग हैं; उन्हें श्रद्धा तो होती है, लेकिन वे अपनी तर्कबुद्धि से असीम परमात्मा को तौलते हैं परंतु तौल नहीं पाते। फिर संशय पैदा होता है। हम परमात्मा को बुद्धि के, मन और वाणी के स्तर पर न लाएँ। वे इन सबसे परे हैं। इसलिये कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं समर्थ करने, न करने अथवा ऐसा कुछ करें; जिसके बारे में हमारी बुद्धि सोच भी नहीं सकती, परमात्मा समर्थ हैं। प्रभु के भक्तों में भी यह सामर्थ्य आ जाती है; जिसे हम चमत्कार कहते हैं। लेकिन वह कोई चमत्कार नहीं, प्रभुकृपा का फल है, जो कोई भी श्रद्धासहित परमात्मा को भजता है, वे सब ऐसा कर सकते हैं। इसलिए भगवान गीता में ऐसे व्यक्तियों को सचेत करते हैं कि इन तीन बातों से निरंतर दूर रहकर मानव ऐहिक एवं पारलौकिक आनंद को प्राप्त कर सकता है। नहीं तो विनाश निश्चित है जोकि आज हम देख ही रहे हैं, सर्वत्र अशांति, पीड़ा इत्यादि। इन सबसे मुक्ति पाने के लिए गीता के इस दिव्य संदेश को मानकर चिरशांति की स्थापना कर सकते हैं।

❑❑❑

गीता संदेश

योग : कर्मसु कौशलम् !

- पं. अशोक पारीक (पुणे)

श्रीमद् भगवदगीता एक अलौकिक ग्रंथ है। हमारी भारतीय संस्कृति में प्रचुर मात्रा में ग्रंथ उपलब्ध हैं। इन सब ग्रंथों का अध्ययन करना मनुष्य के वश की बात नहीं है। इसलिये अखिल लोक के कल्याणार्थ भगवान नारायण स्वयं श्रीकृष्ण का स्वरूप धारण कर कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश किया तथा पुराण मुनि श्री वेदव्यासजी ने इसे महाभारत के अठारह अध्यायों में समाविष्ट किया और कहा समस्त शास्त्रों के चिंतन में पड़े हो सारा जीवन व्यतीत हो जायेगा फिर भी मनुष्य जन्मरूपी इस अल्पावधि में समस्त शास्त्रों का चिंतन आप कर नहीं पायेंगे इसलिये 'गीता सुगीता कर्तव्या' गीता का चिंतन करना प्रारंभ कीजिये। जो कि समस्त शास्त्रों का सार है और स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से प्रगट हुई है। तब से अनेक वर्ष बीत गये श्रीमद् भगवद् गीता ने सारे विश्व में एक क्रांति खड़ी कर दी। चाहे देशी हो या विदेशी इसे पढ़े बिना नहीं रहा। जिसने गीता को पकड़ा गीता ने उसे भी पकड़ लिया। हर एक सुधीजनों ने अपनी-अपनी भाषा में अपनी अपनी मनीषा के द्वारा इसका मंथन कर जगत के प्रति गीता का प्रेम प्रकट किया। मानो वे बंध गये इसके प्रेम में। एक-एक श्लोक की अनेकोनेक व्याख्याएं करते रहे। करते भी क्यों नहीं ? यही तो एक मात्र शास्त्र है जो देवकी के पुत्र के द्वारा रणांङ्गण में गाया गया और छोटे छोटे सूत्रों में मानो गागर में सागर भर दिया भगवद्गीता के सारे सूत्रों को तो क्या किसी भी एक सूत्र को अपने जीवन में उतारने मात्र से मनुष्य का कल्याण हो जाता है।

गीताजी में अनेक सारे छोटे छोटे सूत्र हैं जोकि वास्तव में अद्भुत है जैसे कि "क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ" हृदय की क्षुद्र दुर्बलता का त्याग करों और उठो, कुछ महान् कार्य करो। "समत्वं योग उच्यते" समता का भाव ही योग है। "कृपणा फलहेतवः" वे कृपण हैं जो फल के हेतु बनते हैं। "अशान्तस्य कुतः सुखम्" अशान्त व्यक्ति को सुख कहाँ ? "श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः" गुणरहित भी स्वधर्म श्रेष्ठ है। "परधर्मो भयावह" परधर्म भयदायक है। "श्रद्धावंल्लभते ज्ञानं" श्रद्धावान ही ज्ञान को प्राप्त करता है। "न सुखं संशयात्मनः" संशयी व्यक्ति को सुख नहीं। "ज्ञाननिर्धूतकल्मषा" ज्ञान समस्त कल्मषों को धो देता है। 'उद्धरेदात्मनात्मानं' आप अपना स्वयं उद्धार करें। 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' मैं योग और क्षेम का वहन करता हूँ। "त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्" त्याग से तत्काल शान्ति प्राप्त होती है। "कर्मानुबंधीनि मनुष्यलोके" मनुष्य लोक कर्मों के बंधन में बंधा है। इत्यादि अनेक सारे छोटे छोटे सूत्र है जिसमें ही "योगः कर्मसु कौशलम्" इस सूत्र के बारे में हम चर्चा करेंगे पूरा श्लोक दुसरे अध्याय में वेदव्यासजी लिखते हैं।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व, योगः कर्मसु कौशलम्।।

दुसरे अध्याय में भगवान दो प्रकार की निष्ठाओं का वर्णन करते हैं। जिसमें एक सांख्यनिष्ठा यानी ज्ञानयोग, दुसरी योगनिष्ठा यानी कर्मयोग, दुसरे अध्याय में इन दोनों बातों का वर्णन, बड़े विस्तार से प्राप्त होता है। ज्ञानयोग में देहादेही भेद बतलाया गया, आत्मा, अजर, अमर, नित्य और शाश्वत है। हमारे मर जाने पर भी आत्मा कभी नहीं मरती। भगवान बड़ा ही सुंदर और बालबुद्धि को भी समझ में आ जाये इस प्रकार का उदाहरण देकर इस बात को समझाते हैं कि जैसे वस्त्र पुराने हो जाने पर अथवा जीर्ण हो जाने पर हम वस्त्र बदल देते हैं। उसी प्रकार हमारा यह शरीर जब बहुत पुराना हो जाता है, बिल्कुल जीर्ण हो जाता है, पाँवों में चलने की शक्ति नहीं रहती, हाथों में कार्य करने की शक्ति नहीं रहती, वाणी में बोलने की शक्ति नहीं रहती, किसी कवि ने वृद्धावस्था का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है।

दृग-दृग नहीं तेज, देह जब डगमग।
पग-पग मग-मग अलग परम

चग-मुख दंत, वचन जब फग-फग
जम अनुचर लगभग जगरम्
अब तो भगवद्भज चेत, सुभग नर,
जगभर सुयश अचल पसरे
झटपट मनु चेत, कपट तज खटपट
काल झपट सिर झपट करे।

बोलते कुछ हैं, लेकिन धरवालों को सुनाई कुछ औरही देता है, कानों की श्रवणशक्ति, बुद्धि की स्मरणशक्ति जब समाप्त हो जाती है। सारे शरीर का चर्म एक जगह इकट्ठा होने का प्रयास करता है। तब भगवान हम पर कृपालु होते हैं और इस जरा जीर्ण शरीर को पुराने वस्त्रों की तरह त्याग करवाकर आत्मा को नया वस्त्र प्रदान कर देते हैं। यह तो हमारे कर्मों पर निर्भर करता कि हमें अलङ्कारों से सुसज्जित वस्त्र लेना है कि साधारण वस्त्र। मानव देह अनेक सारे अलङ्कारों से जड़ित वस्त्र है, और अन्य प्राणियों की देह साधारण वस्त्र है। तो इस प्रकार भगवान कहते हैं कि दुनिया में आत्मा का हनन करनेवाला कोई तत्त्व उत्पन्न नहीं हुआ है। यह अच्छेद्य है। इसका शस्त्र छेदन नहीं कर सकते। यह अदाह्य है, इसे आग जला नहीं सकती। यह अक्लेद्य है। इसे जल गला नहीं सकता। यह अशोष्य है इसे वायु सुखा नहीं सकती। इस प्रकार आत्मा के अमरत्व का उपदेश बड़े ही विस्तार से भगवान ने किया और इसे ज्ञानयोग कहा गया।

आगे चलकर भगवान कर्मयोग का वर्णन करते है जिसे योग कहकर पुकारते हैं और कहते हैं कि अर्जुन मैं जिस प्रकार के कर्म का उपदेश तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ ऐसा ''स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'' छोटे से छोटा कर्म तुम्हें आनेवाले महान भय से मुक्त कर देगा। वेदों में कर्मयोग के विषय में बहुत कुछ बतलाया गया जिसमें सकाम और निष्काम दो प्रकार के कर्मों का वर्णन किया। सकाम कर्मों को मनुष्य सुखोपभोग के लिये करता है। भगवान के समय में राजाओं के सामने यज्ञों का बड़ा बोलबाला रहा। हर एक राजा यज्ञ करके स्वर्ग जाना चाहता था। क्योंकि उसे पृथ्वी के सुख अल्प लगते थे। पृथ्वी की मदिरा स्वर्ग की जगह सोमरस की अधिक चाह थी, पृथ्वी की नृत्यांगनाओं से स्वर्ग की अप्सरायें उन्हें अधिक प्यारी थी। इसलिये यज्ञ करके विशाल स्वर्ग लोक के समस्त सुखों का उपभोग तब तक करते जब तक उनके पुण्य शेष रहते। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'' पुण्य क्षीण होने जाने पर पुनश्च मर्त्यलोक आना पड़ता। इस प्रकार सकाम कर्मों के द्वारा उनका आवागमन चलता रहता।

भगवान को यह बात जची नहीं। उन्होंने प्राणियों पर दया करने के लिये और जन्म मृत्यु के आवागमन के चक्र से छुड़ाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण किया। आद्य गुरु शंकराचार्य कहते हैं। किसका जन्मना श्रेष्ठ है ''जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म'' जिसका फिरसे जन्म नहीं होता। जो केवल एक बार जन्म लेकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है। उसका जन्म श्रेष्ठ है। आगे कहते है, किसका मरण श्रेष्ठ है ''यस्य पुनर्न मृत्यु'' जो बार-बार नहीं मरता जो केवल एक ही बार मरता है। यह बार बार जीना बार बार मरना भगवान को अप्रिय लगा, इसलिये भगवानने निष्काम कर्मयोग का उपदेश करते हुए अर्जुन से कहा तुम बुद्धियुक्त होकर निष्काम कर्म करो क्योंकि सकाम कर्म में पाप और पुण्य दोनों के फल भोगने पड़ते हैं। पाप का बुरा फल और पुण्य का अच्छा फल। इसलिये बुद्धियुक्त होकर पाप और पुण्य को यहीं नष्ट कर देना चाहिये क्योंकि कर्म की गति बड़ी गहन है।

बड़े-बड़े विद्वान भी पाप और पुण्य, कर्म और अकर्म को समझ नहीं पाते इसलिये समत्व बुद्धि से भगवान के लिये कर्म करने का नाम बुद्धियुक्त होकर कर्म करना है। कर्म तो करना है क्योंकि बिना कर्म किये कोई रह नहीं सकता। अगर हम कर्म न करने की ठान ले तो प्रकृति जबरदस्ती हमसे कर्म करवायेंगी। अगर कोई यह हठ करें कि मैं नींद नहीं लूंगा, केवल बिस्तर पर बैठा रहूँगा। यह संभव नहीं। हां वह कुछ समय अपने हठ के साथ रह सकता है। लेकिन प्रकृति उसे डुलायेगी एवं सुलायेगी। इसलिये पाप, पुण्य से परे होने का उपाय अकर्म नहीं। भगवदार्पण बुद्धि से कर्म करना है। ''बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते'' बुद्धियुक्त मनुष्य सुकृत (पुण्य) दुष्कृत (पाप) दोनों को नष्ट कर देता है।

हम सदैव अकेले हैं, जन्मसे लेकर मृत्यु तक अकेलापन ही हमारा निवासस्थान है। यह विश्व केवल एक धर्मशाला है। चार दिन गुजार के एक दिन चले जाना है। मृत्युके पहलेही उसकी तैयारी करनी है। बच्चोंको और युवा पीढीको याद दिलानी चाहिए हम सब यही छोडके जानेवाले है। फिर वे जो प्राप्त करेंगे वह अच्छे साधनसेही प्राप्त करेगे और संतुष्ट रहेंगे।

''मृत्युके विस्मरणमें ही अधर्मका प्रारंभ है।
मृत्युके स्मरणमे धर्मका प्रारंभ है।''

अचानक मैंने किया हुआ एक हायकू स्मरण आया। वास्तविक यह कहनेकी जगह है नहीं। लेकिन मृत्युके विषय होने के कारण देना उचित समझती हूँ। हायकू एक जपानी काव्य प्रकार उत्स्फूर्त उद्गार तीन पंक्तीका बिलकूल बोन्सायकी तरह छोटासा फलसहीत पेड (गहरा अर्थ होना है।) मराठी में है।

माझ्या प्राणप्रिया जीवा, तू मला फसवू नकोस
जाता-जाता अलविदा करायला विसरू नको.

हमने जब जनम लिया उस समयही हम कब जानेवाले है यह निश्चित हो चुका है। सामग्री तैयार है। उठाने वाले तैयार है। वस्त्र स्थान सब तय हो चुका है। केवल प्राण तनसे निकलना बाकी है।

कविवर्य कुसुमाग्रज अपनी एक कवितामें कहते हैं :

प्रेम सगळ्यांवरच करावे
पारध्याने अरण्यात पायावर मारलेल्या
शरावर प्रेम करावे.

संत तुकाराम इसका रहस्य मार्मिकतासे करते है :
'याचसाठी केला होता अट्टाहास। शेवटचा दिस गोड व्हावा'

यह दिन प्राप्त करनेके लिए हर रोज परमेश्वर स्मरण आवश्यक है। एकाएक यह असंभव है। उत्कट भक्ति योगाभ्यास, मनोनिग्रह, इंद्रियनिग्रह, और हृदयमें सदैव ईश्वरभाव यही अंतिम दिन सफल होनेका एकमेव मार्ग है।

□ ■ □

गीतादुग्धामृत

- अशोक पारीक

गीता एक अलौकिक ग्रन्थ है, ७०० श्लोक, १८ अध्याय और कृष्ण-अर्जुन संवाद इसी को श्रीमद् भगवद्गीता कहते है।

भगवद्गीता मनुष्य का सर्वांगीण विकास करने वाला ग्रन्थ है। इसकी शरण में आने के लिए किसी विशेष पक्ष की आवश्यकता नहीं कोई जाती-पाती, धन-दौलत, रूप सौन्दर्य की भी आवश्यकता नहीं। बस ! आवश्यकता है, श्रद्धा व भक्ति की, और आश्चर्य की बात तो यह है, कि आज समाज में जिसकी आवश्यकता गौण (कम) है, उसको हमने प्रमुख बना दिया है, और जिसकी आवश्यकता है, उसको गौण। अनेक लोग सन्तों से प्रश्न किया करते है कि हमें वेद पढने का अधिकार क्यों नहीं है? अगर उनको किसी भी तरह उसका कारण बताया भी जाता है तो वो उस बात को समझने का प्रयत्न न करके अपना सम्पूर्ण जीवन इसी झगडे में गवाँ देते हैं। अगर हम ये समझ ले शास्त्रों की आज्ञा है कि -

स्त्रीशुद्रद्विजबन्धूनाम् त्रयी न श्रुतिगोचरा।

इसलिए शास्त्र की आज्ञा पालने के लिए वेदाध्ययन नहीं करेंगे। लेकिन विचारार्थ बात यह है, कि जो हम अनेक वर्षों तक वेद पढते रहने पर प्राप्त नहीं कर सकते वो केवल एक घण्टा गीता पढकर प्राप्त कर सकते हैं। कहा भी है -

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।

आप तो बस गीता को अपने जीवन में उतार लो, अनेक सारे गन्नों को खाने से अच्छा है, कि एक गिलास गन्ने का रस पी लीया जाय।

सभी वेदों व उपनिषदों का सार है गीता। भगवान श्रीकृष्ण ने उपनिषदों को गाय बनाया, अर्जुन को बछडा बनाया, और स्वयं दोग्धा बनकर इस गीता रूपी दुग्धामृत को निकालकर एकत्रित किया और आज हम सब लोग इस

दुग्धामृत का पान कर रहे हैं।

मैं तो इस गीता दुग्धामृत को दुध से भी बढिया समझता हूँ, क्यों कि दूध को अगर ज्यादा समय रखा गया तो वह खट्टा हो जाता है, किन्तु ये गीता रूपी दुग्धामृत तो अनेक वर्षो से रखा है और दिन-प्रतिदिन मीठा होता जा रहा है।

ऐसे दुग्धामृत को छोडकर अगर हम अन्य क्षणिक विषय भोगों के लिए जी रहे हैं, तो ऐसे जीवन को भगवान -

अघायुरिन्द्रियरामो मोघं पार्थ स जीवति॥३-१६॥

व्यर्थ ही जी रहे है ऐसा कहते हैं। इसलिए जो मनुष्य इन्द्रियाधीन है, उन्हे आत्माधीन होने के प्रयत्न करना चाहिए क्यों कि मनुष्य जन्म मौज मस्ती, ऐश आराम करने के लिए नहीं। यह तो 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' इस चक्र से छूटने के लिए मिला है। ''सुलभं सुदुर्लभंम्''। सुदुर्लभम् अपि सुलभं। सुदुर्लभ होते हुए भी सुलभ हुआ है, इस मानव देह की सभी वेद पुराण सभी शास्त्र प्रशंसा करते हैं।

बडे भाग मानुस तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथनि गावा॥

यह मनुष्य शरीर बडे ही भाग्य से पाया है, देवताओं को भी दुर्लभ और सन्तों के द्वारा प्रशंसित है, इसमें भी भारत में जन्म तो अत्यन्त दुर्लभ ही है, क्यों कि भागवतकार कहते है - अहो अमीषां किमकारिशोभनं,

इस भारतवर्ष में जन्मने वाले मनुष्यों ने क्या पुण्य किया है कि इन्हें भारतवर्ष में जन्म मिला जिसके लिए देवता भी तरसते रहते हैं, ऐसा मानवदेह फिर भारतवर्ष में जन्म इसमें भी गीता जैसे सद्ग्रन्थ का वाचन व चिन्तन तो, ''सोने आणी परिमळे'' सोनेमें सुहागा ही है।

तो आइये हम हमारे जन्मको सार्थक करते हुए गीतादुग्धामृत का पान करें। गीता धर्ममय ग्रन्थ है, इसके प्रारम्भ में धर्म शब्द हैं, इसका निर्वाण ''मम'' शब्द से होता है। तात्पर्य ये कि, सम्पूर्ण गीता हमें यही सिखाती है कि हर व्यक्ति समाज में रहते हुए 'मम धर्म' (मेरे धर्म) का विचार करे। मनुष्य शुभ विचारों को लेकर जीये।

रामकृष्ण परमहंस कहाँ करते थे कि गीता हमे ''गीता'' इस शब्द को जल्दी-जल्दी दस बार बोलने पर जो शब्द प्रस्फुरित होते है, वही हमें सीखाती है। गीता को दस बार बोलने पर ताकी-ताकी शब्द निकलेगा भगवती गीता हमें कहती है कि मनुष्य जीवन में त्याग करें। क्या त्याग करें? स्वार्थ लोलुपता का त्याग करे, बुरे विचारों का तथा संकुचित बुद्धि का त्याग करें।

सन्तों को त्यागी व्यक्ति बहुत प्रिय है। गीता के प्रथम अध्याय और प्रथम श्लोक से पहले ''धृतराष्ट्र उवाच'' शब्द आया। आद्य गुरू शंकराचार्यजी ने इस अध्याय की व्याख्या ही नहीं की क्यों कि उनको शायद धृतराष्ट्र का व्यक्तित्व पसन्द नहीं आया। धृतराष्ट्र शब्द का अर्थ है, राष्ट्र को धारण करने वाला और राष्ट्र को धारण करने वाला अन्धा नहीं होना चाहिए। धृतराष्ट्र केवल नेत्रान्ध ही नहीं वह विचारों से भी अन्धा है। इसे त्याग पसन्द नहीं। धृतराष्ट्र अपने जीवन में कुबुद्धि का त्याग कर देता यानी दुर्योधन का त्याग कर देता, तो कुरुकुल का नाश न होता। लेकिन वह तो धर्मक्षेत्र में भी स्वार्थ की ही चर्चा करता है।

देखिये तीर्थक्षेत्र पापों का मार्जन करता है, अगर कोई व्यक्ति तीर्थक्षेत्र में जाने के बाद भी पाप करता है, तो वह पाप वज्रालेप हो जाते हैं, उनका कभी मार्जन नहीं होता। इसलिए तीर्थक्षेत्र में केवल परमात्मा के अलावा अन्य किसी के दोष, गुणों का चिन्तन न करें। अपना स्वार्थ कैसे फलीभूत होगा इसकी भी चिन्ता न करें।

कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहाँ है। गीता के प्रथम श्लोक में ही ''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'' शब्द आया है। जो धर्मक्षेत्र है वही तीर्थक्षेत्र है। हमारे जीवन में अथवा तीर्थक्षेत्र में जाते समय हमारे साथ कुबुद्धि नहीं होनी चाहिए। कुबुद्धि रूपी दुर्योधन को अगर हम तीर्थक्षेत्र लेकर जायेंगे यानी धर्मक्षेत्र में लेकर जायेंगे, तो वहाँ भी युद्ध ही होगा। बेचारे धृतराष्ट्र के साथ भी यही हुआ वह धर्मक्षेत्र में आने के बाद भी ''मामका: पाण्डवा:'' (मेरे और उसके) की बात करता है, अपितु पण्डु धृतराष्ट्र का भाई होने के कारण पाण्डव भी धृतराष्ट्र के पुत्र के समान हैं, लेकिन मनुष्य के साथ अगर दुर्बुद्धि रही, तो मनुष्य के मन में अच्छे विचार नहीं आ सकते।

□ ■ □